वीर संवत २४९२, माघ कृष्णपक्ष १०, मंगलवार

दि.१५-२-१९६६, गाथा ५, ६, प्रवचन नं.-२६

'छहढाला' की यह चौथी ढाल है। चौथी ढाल का पाँचवा श्लोक है, श्लोक कहते हैं ? क्या कहते हैं ? पाँचवा श्लोक चलता है। उसका भावार्थ, देखो ! भावार्थ आया न ? श्लोक आ गया। क्या कहा ? देखो !

कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे;
ज्ञानीके छिनमें, त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते।
मुनिव्रत धार अनंतबार ग्रीवक उपजायौ;
पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो।।५।।

उसका भावार्थ लेते हैं। **भावार्थ :- 'मिथ्यादृष्टि जीव...'** अर्थात् अज्ञानी जीव **'आत्मज्ञान (सम्यग्ज्ञान) के बिना...'** क्या कहते हैं ? यह आत्मा अन्तर ज्ञानानंद स्वरूप है, शुद्ध आनन्द (स्वरूप है), उसके ज्ञान बिना अज्ञानी... देखो ! पाठ में अर्थ में अज्ञानी लिया है। समझ में आया ? पाठ में तो साधारण शब्द है, 'ज्ञान बिन', लेकिन अर्थ में स्पष्ट लिया है। यह आत्मा ग्यारह अंग अनन्त बार पढा और बालतप भी किया। आत्मा के ज्ञान बिना तप भी किया। दो बात चलती है, देखो !

'आत्मज्ञान (सम्यग्ज्ञान) के बिना करोड़ों जन्मो-भवों तक बालतपरूप उद्यम करके...' मास-मासखमण उपवास का पारना किया। दो-दो महिने, बारह-बारह महिने का (किया), लेकिन वह तप करने पर भी... यहाँ तो 'दौलतरामजी' ऐसा कहते हैं कि, आत्मा ज्ञानस्वरूप के भान बिना वह करोड़ों भव के तप में भी उसे दुःख ही था। अनन्त भव में भी करोडों भव की बात करते हैं। अनन्त-अनन्त भव किये उसमें मनुष्यभव में, करोड़ों भव

मनुष्यभव में ऐसा किया कि, जिसमें मुनिव्रत धारण करके मास-मासखमण के उपवास, दो-दो महिने के अपवास (किये), ऐसे करोड़ों भव। आहा..हा...! समझ में आया ? चार गति में भव तो अनन्त किये, वह भी बात नहीं है। मनुष्य के भव अनन्त किये, वह बात भी नहीं। मनुष्य में भी श्रावक व्यवहारव्रत नाम धारण करके उसके भी अनन्त भव किये, लेकिन नग्न दिगम्बर मुनि होकर अनन्त बार मुनिपना का भव, करोड़ों भव किये, वह बात करते हैं। समझ में आया ?

आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य विकल्प से, पुण्य-पाप से रहित अपने शुद्ध आनन्द, ज्ञानस्वरूप (है), उसका अन्तर में ज्ञान-सम्यग्दर्शन, ज्ञान बिना उसने करोड़ों भव में करोड़ों वर्ष बहुत तपस्या की। उस तपस्या में आत्मा का आनन्द नहीं आया, क्योंकि वह तपस्या दु:खरूप है। समझ में आया ? देखो ! 'दौलतरामजी' क्या कहते हैं ? साधु होकर वह बालतप अनन्त बार किया, लेकिन आत्मा अन्दर पुण्य-पाप के राग से, शुभ-अशुभ विकल्प से रहित (है), ऐसे आत्मा का अन्तर ज्ञान बिना, ऐसी सम्यग्दर्शन की अवस्था बिना, ऐसा बालतप करोड़ों भव में, करोड़ों वर्षों तक किया (लेकिन उसमें) दु:ख था; लेश सुख नहीं था। अन्तिम का शब्द है, भाई ! उसे जरा-सा भी सुख नहीं था; थोड़ा भी सुख नहीं था। समझ में आया ? एक बात।

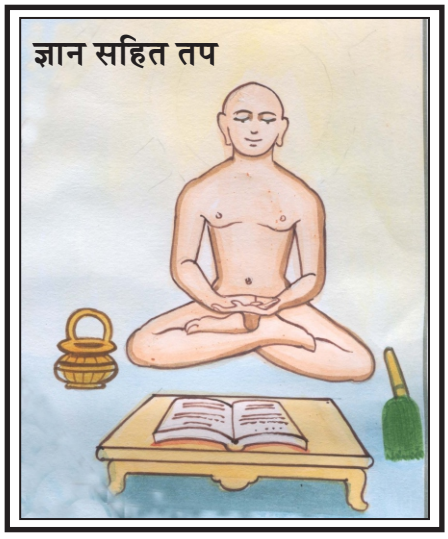

कोई कहते हैं कि, आत्मा के भान बिना वह उपवास करे, दो-दो महिने, पाँच-पाँच महिने उपवास करे तो कुछ तो, थोड़ा तो धर्म होगा न ? धर्म हो तो सुख होना चाहिए। आत्मा का सुख होना चाहिए, ऐसा 'दौलतरामजी' कहेत हैं, देखो ! ऐसा करोड़ों भव में करोड़ों वर्षों तपस्या की तो भी '**जितने कर्मो का नाश करता है, उतने कर्मो का नाश सम्यग्ज्ञानी जीव-**' धर्मी जीव-सम्यग्ज्ञानी '**स्वोन्मुख ज्ञातापना के कारण...**' शुद्धस्वरूप के अन्तर स्वसन्मुख, अपने ज्ञाता-दृष्टापने के कारण।

अज्ञानी परसन्मुख था। करोड़ों भव में करोड़ों वर्ष तप किया लेकिन उसका लक्ष्य पर की ओर था। मिथ्यादृष्टि है, स्वसन्मुख नहीं था। आहा..हा... ! समझ में आया ?

कहते हैं कि, भगवान आत्मा अपना ज्ञानस्वरूप सरोवर चिदानन्द प्रभु, उसके अन्तर स्वसन्मुख होकर जितने कर्म क्षणमात्र में खिरते हैं, उतने आत्मा के भान बिना अज्ञानी करोड़ों भव में तप करता है तो (भी) उतने कर्म खिरा सकता नहीं। परंतु उसे यहाँ आखिर में कहते हैं... देखो ! '**स्वरूपगुप्ति से - क्षणमात्र में सहज...**' नाश करते हैं। हठ नहीं। वह (अज्ञानी) तो हठ से उपवास करता है। मुझे करना पडे, ऐसे (भाव से करता है)। आत्मज्ञान नहीं, अंतरदृष्टि नहीं, अनुभव नहीं (है)।

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप (है), ऐसा अन्तर में आनन्द के बोध बिना, आनन्द के अंश के अनुभव बिना मिथ्याज्ञानी ऐसा सब करे (तो वह) एकान्त दुःखी है। समझ में आया ? दुःख में कर्म क्यों खिरे ? ज्ञानी आत्मा-सम्यग्दृष्टि अपने शुद्धस्वरूप के अन्तरसन्मुख होकर, अनत्र में ज्ञान में एकाकार होकर एक क्षण में स्वसन्मुख (होकर), परसन्मुखता से (जो) कर्म बंधे थे (उसे) स्वसन्मुख (रोकर) छोड़ देते हैं, छूट जाता है। समझ में आया ? अनन्तकाल में क्या चीज़ है (उसका) ख्याल नहीं (किया)। यह अर्थ 'दौलतरामजी' करते हैं। आहा..हा... ! एक बात (हुई)।

दूसरी (बात)। '**यह जीव, मुनि के (द्रव्यलिंगी मुनि के महाव्रतों को धारण...)**' किये। अनन्तबार पंच महाव्रत (धारण किये)। सुनो ! उसमें है या नहीं ? '**मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ;**' तो क्या कहते हैं ? '**पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो।**' उसका क्या अर्थ निकाला ? अन्तर आत्मा का सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान (किये) बिना करोडों भव में, करोडों वर्ष व्रत लिये। पंच महाव्रत, अठ्ठाईस मूलगुण (का पालन किया)। वह पंच महाव्रत तो राग है, दुःखरूप है। क्या बराबर है ? वे क्या कहते हैं ? दुःख है ? महाव्रत दुःख है ? सिद्ध कर दो। महाव्रत दुःख है ?

मुमुक्षु :- आत्मज्ञान नहीं है तो दुःख है।

उत्तर :- आत्मज्ञानवाले को महाव्रत हो तो वह सुख है ? यहाँ वह कहते हैं। एक पंक्ति

में तो बहुत समा देते हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि, '**कोटि जन्म तप तपैं,**' और करोडों भव में मुनिव्रत अनन्त बार धारण किये, अनन्त बार मुनिव्रत धारण किये, पंच महाव्रत लिये। वह पंच महाव्रत का भाव है, (वह दु:ख है)। आत्मज्ञान के बिना सुख न पाया। तुम उसमें से न्याय निकालो। पंच महाव्रत का परिणाम है, वह विकल्प, राग, है, वह दु:ख है, ऐसा कहते हैं। अनन्तबार पंच महाव्रत लिये, लेकिन वह पंच महाव्रत शुभराग है, दु:ख है। ऐसा मुनिव्रत अनन्तबार धारण करके भी क्या किया ?

'**नववें ग्रैवेयक तक के विमानों में अनन्तबार उत्पन्न हुआ, परन्तु आत्मा के भेदविज्ञान बिना...**' पंच महाव्रत का परिणाम भी विकल्प अर्थात् राग है। सम्यग्दृष्टि मुनि को भी पंच महाव्रत का विकल्प आता है, वह भी राग है, दु:ख है - ऐसा सिद्ध करते हैं। आहा..हा...! समझ में आया ? कठिन बात है, भाई ! उसे सादी भाषा में 'छहढाला' में ले लिया है। कोटि जन्म तप तपे और अनन्तबार मुनिव्रत धारण किये लेकिन लेश सुख न पाया। उसका अर्थ क्या हुआ ? भैया ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप चिदानन्द है, उका अन्तर ज्ञाता दृष्टा का भाव किये बिना, राग का परिणाम-महाव्रत का हो या तप का हो, वह सब राग दु:खरूप ही है। आहा..हा...! समझ में आया ? बाहर की चीज़ तो दूर रह गई। क्या कहते हैं ? देखो ! '**पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो।**' अर्थात् अनन्तबार पंच महाव्रत लिया, अठ्ठाईस मूलगुण मुनिव्रत का पालन किया तो वह व्रत दु:ख है, आस्रव है, राग है। समझ में आया ? लेकिन उस विकल्प से, राग से भिन्न अपना निजानन्द भगवान आत्मा का अन्तर ज्ञान, दर्शन किये बिना, अन्तर में अंश भी आत्मा का सुख प्राप्त हुआ नहीं। ओ..हो..हो...! एक शब्द, तो कितना (भरा है) ! गागर में सागर भर दिया है ! कंठस्थ है या नहीं ? थोडा-थोडा ? थोडा-थोडा। तुम्हारे चिरंजीवी को पूछते हैं कि, पिताजी को कंठस्थ है या नहीं ? थोडा-थोडा। थोडा याद है। समझ में आया ? यह तो हिन्दी भाषा, हिन्दी सादी भाषा है, चलती भाषा है। समझ में आया ? क्या कहा ? देखो !

मुनिव्रत धार अनंतबार ग्रीवक उपजायौ;
पै निज आतमज्ञान बिना , सुख लेश न पायो।

इसमें तो बहुत भर दिया है। समझ में आया ? क्योंकि भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा है। इस अतीन्द्रिय आनन्द का स्वबोध अन्तर में हुए बिना अंश भी अन्तर में आनन्द आता नहीं। उसके अलावा बाह्य सन्मुख में पंच महाव्रत धारण करो, अठ्ठाईस मूलगुण धारण करो, क्रियाकाण्ड करो, तपस्या करो वह सब रागभाव दुःखरूप है। समझ में आया ? है उसमें से निकलता है या नहीं ? उसमें है या नहीं ? देखो !

मुनिव्रत धार अनंतबार ग्रीवक उपजायौ;
पै निज आतमज्ञान बिना , सुख लेश न पायो।

एक अंश भी सुख न मिला। उसका अर्थ क्या हुआ ? कि, आत्मसन्मुख अन्तर सम्यग्ज्ञान, दर्शन बिना इतने महाव्रत धारण किये, तपस्या करे तो भी उसे अंश सुख नहीं है अर्थात् दुःख है।

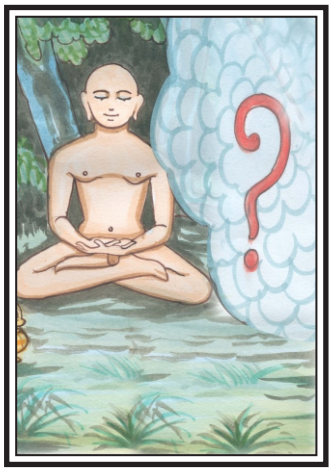

मुमुक्षु :- सुख भी नहीं और दुःख भी नहीं।

उत्तर :- ऐसा होता नहीं, बन सकता नहीं। या सुख, या दुःख। दो में से एक हो सकता है। सुख भी नहीं, दुःख भी नहीं (ऐसा तो) जड़ में होता है। जड़ को है, जड़ को। सुख भी नहीं, दुःख भी नहीं। आत्मा में या आनन्द आता है, या दुःख होता है। दो बात है। इस जड़ को दुःख है ? उसमें आनन्दगुण नहीं।

आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव पड़ा है, तो अतीन्द्रिय आनन्द की दृष्टि छोड़कर जितने क्रियाकाण्ड करने में आते हैं, वे सब दुःखरूप हैं - ऐसा कहते हैं। उसमें है ? भैया ! उसका ऐसा अर्थ होता है ? आपके साथ उनसे हाँ बुलवाते हैं। होशियार आदमी के पास हाँ बुलवाते हैं कि, ऐसा अर्थ निकलता है या नहीं ? देखो ! 'पै निज आतमज्ञान बिना' -

ऐसे महाव्रत में भी, ऐसे व्रत और तप में भी लेश सुख न पाया। लेश-अंश भी नहीं। उसका अर्थ कि, दु:ख पाया। उसमें से निकलता है न ? ये हमारे वकील है। वकील एल.एल.बी. पढ़ा है या नहीं ? लौकिक कानून (पढ़े)। ये भगवान के कानून समझने पडेंगे या नहीं ? आहा..हा... !

'**आत्मा के भेदविज्ञान बिना...**' अर्थात् चिदानन्द भगवान शुद्ध आनन्द है और विकल्प जो महाव्रत आदि का (है), व्रत या अव्रत दोनों, विकल्प जो उठते हैं वह दु:ख है। इस दु:ख से मेरी चीज़ भिन्न है, ऐसा भेदज्ञान किये बिना इतना-इतना क्रियाकांड करने में आया लेकिन उसे आत्मा का ज्ञान नहीं (हुआ) तो लेश अंश भी आत्मा आनन्द पाया नहीं। आनन्द नहीं पाया, इसका अर्थ हुआ कि, मात्र दु:ख पाया। हुआ या नहीं ? भैया !

अव्रत का परिणाम है, वह तीव्र कषाय है, बहुत दु:ख है। व्रत का परिणाम है वह राग है, मन्द कषाय है परन्तु है दु:ख। आहा..हा... ! महाव्रत अर्थात ये अज्ञानी लेते हैं, उसकी बात करते हैं। सच्चे है कहाँ ? वह तो बात करते हैं। अज्ञानी ने आत्मा के भान बिना अनन्तबार व्रत लिये और अनन्तबार लेता है। ले लो, हमें हिंसा नहीं करनी है, लेकिन वह तो विकल्प है। ऐसा लिया उसमें क्या आया ? वह तो राग है। आत्मा राग और विकल्प से रहित (है उसके) बोध बिना, आत्मज्ञान के बिना (सब दु:खरूप हुआ)। क्यों वकील उसमें से निकलता है ? बराबर है ? यह वकील है, वैष्णव वकील है। न्याय से समझना पड़ेगा या नहीं ? वीतराग परमेश्वर का मार्ग है।

त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर फरमाते हैं कि, एक समय में भगवान आत्मा आनन्द का कन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का रस है। उसका अंतर में स्वसन्मुख होकर सम्यग्ज्ञान किये बिना आत्मा का आनन्द आता नहीं और आत्मा के स्वसन्मुख हुए बिना परसन्मुख की जितनी क्रियाकांड तपस्या करता है, वह सब दु:ख की अवस्था का अनुभव करता है। समझ में आया ? उस '**जीव को वहाँ भी लेशमात्र सुख प्राप्त नहीं हुआ।**' ओहो..हो... ! आज मंगल दिन है। आज मंगलवार है या नहीं ? मंगल दिन, है देखो ! भगवान के २५०० वर्ष में आठ दिन है न ? और यह बात आई। भाई ! कितनी बात करते हैं !

आत्मा महावस्तु राग के एक विकल्प से पार है। शरीर, वाणी से तो पार, भिन्न है ही, परन्तु व्रत और तप का विकल्प उठता है कि, मैं ऐसा करुँ, तप करुँ वह भी राग है, उससे रहित भगवान आत्मा ज्ञाता-दृष्टा सच्चिदानन्द सिद्ध समान स्वरूप अन्तर में अन्तर स्वसन्मुख की दृष्टि-ज्ञान किये बिना परसन्मुख की क्रियाकाण्ड लाख, करोड भव (करे) तो यहाँ 'दौलतरामजी' कहते हैं कि, थोडा भी आत्मा के सुख का अंश उसे नहीं है। है तो उसे संसारी सुख तो दु:ख ही है। भाई ! उसमें ऐसा क्या कि नहीं ? आहा..हा... !

इतना कहकर अब अभ्यास करने की थोड़ी प्रेरणा करते हैं। इतना ज्ञान-आत्मज्ञान और पर के ज्ञान दो में भेद है। आत्मदृष्टि और पर की दृष्टि में भेद है। आत्मचारित्र और पर का आचरण व्यवहार का भेद है, इतना बताया। आत्मज्ञान बिना शास्त्रज्ञान दु:खरूप है। आत्मदृष्टि बिना देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प दु:खरूप है। आत्मशांति की स्थिरता-चारित्र के बिना पंच महाव्रत का परिणाम भी दु:खरूप है। भैयाजी ! पहले यहाँ कभी आये थे या नहीं ? पहलीबार आये हो ? अच्छा !

'छहढाला'। 'छहढाला' का अर्थ किया है न ? उसमें कहीं किया है। ढाल... ढाल। अपने में बैरी-शत्रु विकार नहीं आये - ऐसी अपनी दृष्टि करना, उसका नाम 'छहढाला' है। ढाला... ढाला। कहीं लिखा है या नहीं ? पीछे है ? कहीं पर लिखा है। ढाल का अर्थ है कहीं पर, ये रहा देखो ! १८० पन्ना है। नीचे (फूटनोट में) है। '**इस ग्रन्थ में छह प्रकार के छन्द और छह प्रकार के प्रकरण हैं, इसलिये तथा जिस प्रकार तीक्ष्ण शस्त्रों के प्रहार को रोकनेवाली ढाल होती है, उसीप्रकार जीव के अहितकारी शत्रु-मिथ्यात्व, रागादि आस्रवों का तथा अज्ञानांधकार को रोकने के लिये ढाल के समान यह छह प्रकरण है;...**' ढाल... ढाल। है ? १८० पन्ने पर है, नीचे है, नीचे। समझ में आया ? ढाल नहीं रखते ? लड़ाई करते समय हाथ में ढाल रखते हैं। (शत्रु का) शस्त्र नहीं आ जाये इसलिये (रखते हैं)। वैसे यह 'छहढाला' है। समझ में आया ? और आत्मा का दर्शन, आत्मा का ज्ञान और चारित्र हो, इसलिये यह 'छहढाला' है। पुस्तक रखा है या नहीं ? बहुत कठिन बात, भाई ! कभी अर्थ सुना नहीं हो। क्या सत्य है ? (मालूम नहीं)। ये पाँचवा श्लोक (समाप्त) हुआ।

ज्ञान के दोष और मनुष्यपर्याय आदि की दुर्लभता

तातैं जिनवर-कथित तत्त्व अभ्यास करीजे;
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लख लीजे।
यह मानुष पर्याय, सुकुल, सुनिवौ जिनवानी;
इह विध गये न मिले सुमणि ज्यौं उदधि समानी।।६।।

अन्वयार्थ :- (तातै) इसलिये (जिनवर-कथित) जिनेन्द्र भगवान के कहे हुए (तत्त्व) परमार्थ तत्त्व का (अभ्यास) अभ्यास (करीजे) करना चाहिए और (संशय) संशय (विभ्रम) विपर्यय तथा (मोह) अनध्यवसाय (अनिश्चितता) को (त्याग) छोड़कर (आपो) अपने आत्मा को (लख लीजे) लक्ष्य में लेना चाहिए अर्थात् जानना चाहिए। (यदि ऐसा नहीं किया तो) (यह) यह (मानुष पर्याय) मनुष्य भव (सुकुल) उत्तम कुल और (जिनवानी) जिनवाणी का (सुनिवौ) सुनना (इह विष) ऐसा सुयोग (गये) बीत जाने पर, (उदधि) सच्चे रत्न की भाँति (पुनः) (न मिले) मिलना कठिन है।

भावार्थ :- आत्मा और परवस्तुओं के भेदविज्ञान को प्राप्त करने के लिये जिनदेव द्वारा प्ररूपित सच्चे तत्त्वों का पठन-पाठन (मन) करना चाहिए; और संशय[१] विपर्यय[२] तथा अनध्यवसाय[३] इन सम्यग्ज्ञान के तीन दोषों को दूर करके आत्मस्वरूप को जानना चाहिए। क्योंकि जिसप्रकार समुद्र में डूबा हुआ अमूल्य रत्न पुनः हाथ नहीं आता उसीप्रकार मनुष्यशरीर, उत्तम श्रावककुल और जिनवचनों का श्रवण आदि सुयोग भी बीत जाने के बाद पुनः पुनः प्राप्त नहीं होते। इसलिये यह अपूर्व अवसर न गँवाकर आत्मस्वरूप की पहिचान (सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति) करके यह मनुष्य-जन्म सफल करना चाहिए।

---

१. संशय :- विरुद्धानेककटिर्स्पाशज्ञान सशयः = 'इस प्रकार है अथवा इसप्रकार ?' - ऐसा जो परस्पर विरुद्धतापूर्वक दो प्रकाररूप ज्ञान, उसे संशय कहते हैं।

२. विपर्यय :- विपरीतैककोटिनिश्चयो विपर्ययः = वस्तुस्वरूप से विरुद्धतापूर्वक 'यह ऐसा ही है' - इसप्रकार एकरूप ज्ञान का नाम विपर्यय हैं। उसके तीन भेद हैं - कारणविपर्यय, स्वरूपविपर्यय तथा भेदाभेद विपर्यय। (मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ.१२३)

३. अनध्यवसाय : किमित्यालोचनमात्रमनध्यवसायः = 'कुछ है' - ऐसा निर्णयरहित विचार अनध्यवसाय है।

'ज्ञान के दोष और मनुष्यपर्याय आदि की दुर्लभता।'

तातैं जिनवर-कथित तत्त्व अभ्यास करीजे;
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लख लीजे।
यह मानुष पर्याय, सुकुल, सुनिवौ जिनवानी;
इह विध गये न मिले सुमणि ज्यौं उदधि समानी।।६।।

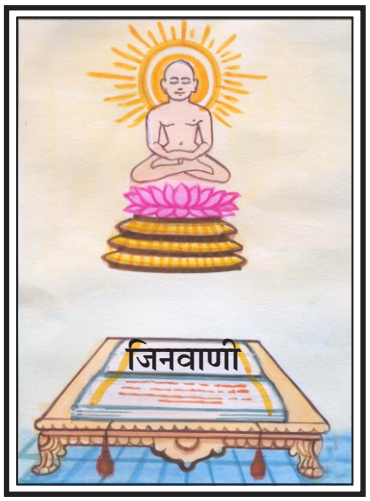

बहुत मीठी भाषा है। मीठी और सरल है। हिन्दी भाषा तो (सरल है)। क्या कहते हैं ? देखो ! उसका शब्दार्थ-अन्वयार्थ है न ? (चित्र में) उपर 'जिनवाणी' लिखा है न ? एक अरिहंत भगवान बनाये हैं। भगवान के मुख से वाणी निकली, जिनवाणी। एक ओर ध्यान करते हैं। देखो ! संशय, विमोह का त्याग करके (आत्मध्यान करता है)। कुर्ता उतारकर ध्यान करता है। है न उसमें ? और नीचे उदधि में मणि गिरता है, बड़े समुद्र में मणि (गिरता है)। ऐसे तीन (चित्र लिये हैं)।

कहते हैं,

'**इसलिये...**' इसलिये क्या ? इसलिये माने क्या ? कि, अनंतबार आत्मा का ज्ञान और आत्मदर्शन-निर्विकल्पदृष्टि बिना, अनुभव बिना तुने पंच महाव्रत तप भी किये, (लेकिन) उसमें कुछ आत्मा का लाभ हुआ नहीं। उसमें कोई आत्मशांति मिली नहीं, आत्मा के कल्याण का रास्ता उसमें से निकला नहीं। वे सब तो दुःखमय भाव हैं। इसलिये - ऐसा (कहते हैं)। '**तातैं**' शब्द है न ? '**इसलिये**' इसलिये '**(जिनवर-कथित)**

जिनेन्द्र भगवान के कहे हुए...' भाषा देखो ! भगवान जिनेन्द्र परमेश्वर त्रिलोकनाथ सो इन्द्रों की उपस्थिति में भगवान की वाणी निकली। अनन्त तीर्थंकर हुए, वर्तमान में महाविदेह में बिराजमान हैं, भविष्य में अनन्त होंगे। भरतक्षेत्र में, महाविदेहक्षेत्र में अनन्त तीर्थंकर हुए, अनन्त होंगे। वर्तमान में २० बिराजते हैं। लाखो केवली बिराजते हैं। महाविदेह में लाखों केवली बिराजते हैं और तीर्थंकर २० बिराजते हैं। क्योंकि वे पुण्यप्रकृतिवाले हैं न ?

ऐसे '**जिनेन्द्र भगवान के कहे हुए...**' ऐसा कहकर क्या कहते हैं ? वीतराग के अलावा जिसका कहनेवाला अज्ञानी है, जिसे सर्वज्ञपद नहीं है, तीनकाल का ज्ञान नहीं ऐसे अज्ञानी वे जो तत्त्व कहा, उसमें तो अज्ञान ही भरा है, मिथ्यात्व भरा है। उसमें कोई सार है नहीं। समझ में आया ? पहले यह निर्णय करना चाहिए। जिनेन्द्र भगवान परमेश्वर ने कहा हुआ, सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा। 'कुन्दकुन्दाचार्य' दिगम्बर महासन्त भगवान के पास गये थे, आठ दिन रहकर वहाँ से यह लाये। ऐसी सनातन वाणी, सनातन मार्ग 'कुन्दकुन्दाचार्य' ने दुनिया को फरमाया। वही मार्ग चलता है।

वही कहते हैं, जिनेन्द्र कथित मार्ग। अज्ञानी ने अपनी कल्पना से कहा हो या अज्ञानी माने कि जगत में एक ही तत्त्व है, आत्मा भी एक ही है, दूसरा कोई है नहीं; लगाओ आत्मा का ध्यान। आत्मा का क्या लगा दे ? आत्मा क्या चीज़ है ? उसका द्रव्य अर्थात् वस्तु क्या ? उसका क्षेत्र अर्थात् क्षेत्र को क्या कहते हैं ? चौड़ाई। चौड़ाई क्या ? और उसमें शक्तियाँ-भाव कितने हैं ? और उसकी वर्तमान अवस्था क्या है ? ये चार बोल चाहिए - द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव। सर्वज्ञ भगवान के अलावा ऐसी चीज़ कहीं हो सकती नहीं। समझ में आया ?

प्रत्येक वस्तु में चार बोल हैं। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव। द्रव्य अर्थात् अपना गुण-पर्याय का पिंड, उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य माने ये पैसा नहीं, हाँ ! प्रत्येक पदार्थ में अनन्त शक्तियाँ हैं और वर्तमान अवस्था है, उसके पिंड को द्रव्य कहते हैं। उसकी चौडाई को क्षेत्र कहते हैं। उसकी त्रिकालशक्ति को गुण-भाव कहते हैं। वर्तमान हालत को, अवस्था को काल कहते हैं। आहा..हा... ! जिनवर भगवान ने ऐसा देखा है। जिनवर सर्वज्ञ के अलावा ऐसा कोई देख सके नहीं। समझ में आया ?

'जिनेन्द्र भगवान के कहे हुए परमार्थ तत्त्व...' देखो ! तत्त्व है न ? अकेला आत्मा नहीं है, सात तत्त्व कहा है, भाई ! सातों तत्त्व हैं। **'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं, 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं', 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः।''** 'उमास्वामी' का पहला सूत्र यह है। दूसरा सूत्र है, 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं।' तत्त्वार्थ-जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष। सात तत्त्व है। जीव और अजीव दो पदार्थ है। आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष उसकी पर्याय है। पर्याय अर्थात् अवस्था है, अवस्था अर्थात् हालत है। गुण तो त्रिकाल पडा है। सात तत्त्व में दो तत्त्व द्रव्य हैं, पाँच पर्याय हैं। भगवान के कहे अनुसार उसका निर्णय करना चाहिए। आहा..हा... ! समझ में आया ?

'जिनेन्द्र भगवान के कहे हुए परमार्थ तत्त्व का अभ्यास करना चाहिए...' कहते हैं, भैया ! अभ्यास करो। अनन्तकाल में ऐसा वास्तविक अभ्यास नहीं कयिा। वास्तविक अभ्यास नहीं किया। ऐसे तो ग्यारह अंग पढ लिये, नव पूर्व पढ लिये। पढ डाला। लेकिन उसमें क्या कहना है, ऐसे अपने चैतन्य का पता लिया न हीं। वही कहते हैं, देखो ! **'परमार्थ तत्त्व का अभ्यास करना चाहिए...'** कहते हैं, **'संशय विपर्यय तथा अनध्यवसाय को छोड़कर...'** उसकी व्याख्या पीछे है। पीछे है, पिछले पन्ने पर है। **'विरुद्धानेककोटिस्पार्शिज्ञान संशयः इस प्रकार है अथवा इसप्रकार ? ऐसा जो परस्पर विरुद्धतापूर्वक दो प्रकाररूप ज्ञान, उसे संशय कहते हैं।'** क्या होगा ? यह आत्मा एक होगा या अनेक होगा ? आत्मा में अनन्त गुण कहते हैं तो एक गुण होगा या अनन्त होंगे ? ऐसे संशय को अज्ञान कहते हैं।

भगवान इसे आत्मा कहते हैं। आत्मा को एक कहते हैं और गुण को अनन्त कहते हैं और क्षेत्र इतना। शरीर प्रमाण है। शरीर प्रमाण से क्षेत्र, भगवान आत्मा का क्षेत्र, द्रव्य वस्तु। उसमें गुण अनन्त (हैं)। ये क्या है ? अनन्त गुण होंगे या नहीं होंगे ? ऐसा संशय, वह अज्ञान अवस्था है। ऐसा संशय छोड़कर तत्त्व का अभ्यास करना - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु :- अभ्यास करने से शंका छूटती है या शंका छूटने से...

उत्तर :- संशय-शंका छोड़े तब उसे अभ्यास करने का मन होगा न ? शंका अर्थात् यह तत्त्व सच्चा लगता है। ऐसे। अभ्यास करने में संशय छोड यानी यह सच्चा होगा या ये असत्य

होगा ? ऐसा संशय छोड़कर अभ्यास करना, ऐसा कहते हैं। ये सच्चा होगा ? भगवान कहते हैं, आत्मा एक इतना है और गुण अनंत (हैं)। सर्व क्षेत्र में व्यापक नहीं है, इतने एक क्षेत्र में रहनेवाला (है)। क्षेत्र इतना (और) गुण अनन्त, कैसे रहते होंगे ? समझ में आया ?

भगवान कहते हैं, उसका सम्यक् अन्तर अभ्यास करे। वास्तविक मैं आत्मा हूँ। मैं आत्मा हूँ तो मैं अनन्त पदार्थ के बीच अपना अस्तित्व रखता हूँ। अनन्त पदार्थ से भिन्न अनन्त धर्म मेरे में हैं और इसके अलावा अनन्तगुने सामान्य, विशेष गुण अनन्त हैं। आहा..हा... ! समझ में आया ?

मुमुक्षु :- अनन्त द्रव्य में कोई (अन्य) द्रव्यरूप नहीं हो जाये ?

उत्तर :- किसी रूप नहीं होता। एक रजकणरूप आत्मा नहीं होता, दूसरे आत्मारूप आत्मा नहीं होता। क्या कहा ? एक अपना आत्मा दूसरे शरीर या कर्म या रजकणरूप से नहीं होता और एक आत्मा दूसरे आत्मारूप कभी तीनकाल में नहीं होता। तब आत्मा टिक सकता है, नहीं तो कहाँ से टिक सकता है ?

मुमुक्षु :- सिद्ध हो तब।

उत्तर :- अरे.. ! अभी। सिद्ध (बने तब) क्या, अनादि अनन्त (टिक रहा है)। समझ में आया ? अभी आत्मा कर्मरूप हुआ नहीं, अभी शरीररूप हुआ नहीं।

मुमुक्षु :- आत्मा को आठ कर्म हैं।

उत्तर :- कहाँ धूल में है ? कर्म कर्म में रहे। समझ में आया ?

अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल,भाव में परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का तीनों काल अभाव है। स्वचतुष्टय में परचतुष्टय का अभाव है। ऐसा निःसंशय-संदेहरहित ज्ञान करना। समझ में आया ? ज्ञान की खबर नहीं, अपने करो, कुछ करो। राग मंद हो तो पुण्य बँध जायेगा। साथ में मिथ्यात्व का लकड़ा लगा है।

मुमुक्षु :- क्या होगा ?

उत्तर :- जन्म-मरण होंगे। क्या होगा क्या ? क्या होगा ? जन्म-मरण होंगे। फिल्म

कुछ पूछते हैं न ? ऐसा कोई बोलता था। उसे अब धर्म में लगा दिया। कोई बोलता था। मालूम नहीं कौन बोलता था ? ऐसा ज्ञान करे तो क्या होगा ? होगा या नहीं ? ऐसा कोई कहता था। होगा या नहीं ? होगा या नहीं होगा ? यहाँ कहते हैं कि, संशय होगा तो सम्यग्ज्ञान नहीं होगा। समझ में आया ?

परमार्थ तत्त्व संशय बिना और '**विपर्यय...**' देखो ! दूसरा बोल विपरीत (है)। आत्मा है नहीं,अपने को तो लगता नहीं,भैया ! होगा, कहीं होगा वह अनध्यवसाय में जाता है। विपरीत (अर्थात्) राग है, वही आत्मा लगता है; शरीर है, वह आत्मा लगता है। ऐसी मान्यता विपरीत है। विपरीत में भी तीन बोल हैं। अन्दर में है। कारणविपर्यास, स्वरूपविपर्यास और भेदाभेदविपर्यास। उसके तीन बोल है। समझ में आया ? एक वस्तु को मानना और उसकेकारण में कोई ईश्वर है या सर्वव्यापक है - ऐसा मानना वह कारणविपर्यास है। स्वरूपविपर्यास-उसमें अनन्त गुण आदि स्वरूप है, उससे विपर्यास मानना। कुछ नहीं, कुछ नहीं, ऐसे भेद क्या करना ? अनन्त गुण हैं तो विकल्प उठतें हैं। अनन्त गुण हैं, अनन्त गुण हैं (तो) विकल्प (उठते हैं)। क्या विकल्प उठे ? अनन्त गुण हैं, वह तो स्वभाविक वस्तु है। उसमें स्वरूपविपर्याय। ऐसा नहीं मानना। एक ही है। अपने तो ध्यान करो। क्या ध्यान ? धूल का (ध्यान) करे ? आत्मा में अनन्तस्वरूप गुण हैं, अनन्त-अनन्त बेहद शक्ति-गुण हैं। ऐसा स्वरूप विपर्यास से रहित यथार्थ स्वरूप की दृष्टि करके अभ्यास करना।

'**तथा अनध्यवसाय...**' कुछ होगा, कुछ होगा, मालूम नहीं पडता। कुछ है, होगा, कुछ होगा। ऐसा नहीं चलता। ऐसा है। भगवान आत्मा देह से रहित है, पुण्य-पाप के राग से रहित है, अनन्त गुण सहित है। ऐसा तत्त्व अभ्यास (करना), वीतराग परमेश्वर ने कहे हुए तत्त्व का अभ्यास करना। समझ में आया ? देखो !'**(अनिश्चिततता) को छोड़कर...**' अभ्यास करना। '**अपने आत्मा को लक्ष्य में लेना चाहिए...**' देखो ! सार लिया। प्रयोजन किया ?'**आपो लख लीजे**'। सात तत्त्व का संशय, विपर्यय और अनिश्चितता छोड़कर अपना भगवान आत्मा आपो, आपो अर्थात् अपना आत्मा 'लख लीजे'। लख अर्थात् अन्तर ज्ञान कर लीजिये। अपने आत्मा का ज्ञान कर लीजिये। आहा..हा... ! समझ में आया ? क्या कहते हैं ? देखो ना !

'संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लख लीजे।' आत्मज्ञान बिन सुख न पायो, कहा था न ? यहाँ 'आपो' ले लिया। मैं तो आत्मा (हूँ)। वाणी से तो पर हूँ, देह से तो भिन्न हूँ परन्तु दया,दान, व्रत का विकल्प जो राग उठता है, वह तो आस्रव है, उससे मैं भिन्न हूँ। ऐसे **'आपो लख लीजे'**। ऐसा आत्मा का अन्तर्मुख होकर ज्ञान कर लीजे। उसका नाम भगवान सम्यग्ज्ञान कहते हैं। आहा..हा... ! समझ में आया ?

तत्त्व का अभ्यास किया। भाषा ली–तत्त्व का अभ्यास। बाद में (लिया) **'आपो लख लीजे।'** जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा मोक्ष है – ऐसा सातों तत्त्व का बराबर निर्णय करना। उसमें से **'आपो लख लीजे।'** भगवान आत्मा अकेला शुद्ध आनन्दमूर्ति है – ऐसे अंतर्मुख होकर,बाहर से विमुख होकर, स्वसन्मुख होकर आत्मा को (जाने), यह आत्मा है, ऐसा ज्ञान कर लेना चाहिए। यह ज्ञान अनन्तकाल में कभी एकसैकेन्ड किया नहीं। समझ में आया ? भाई ! **'आपो लख लीजे'** कैसे होगा ? आहा..हा... ! शब्द बहुत अच्छी तरह लिखे हैं, हाँ !

तातैं जिनवर-कथित तत्त्व अभ्यास करीजे;
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लख लीजे।

देखो ! दूसरी बात। अभी कुछ लोग कहते हैं न कि, देव–गुरु–शास्त्र की श्रद्धा, नव तत्त्व की श्रद्धा सम्यग्दर्शन (है)। यहाँ तो कहते हैं कि, **'आपो लख लीजे'** उसका नाम स्यग्दर्शन और ज्ञान है। पहले से लिखते हैं या नहीं ? पहले की बात है। पहले जैनतत्त्व का – वीतराग ने कहे हुए तत्त्व का अभ्यास करके, **'आपो लख लीजे।'** भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप है। पुण्य–पाप की विकार वृत्ति उत्पन्न होती है, उससे भिन्न (है) – ऐसे विकार से स्वभाव का भेद करके **'आपो लख लीजे'** (अर्थात्) आत्मा का ज्ञान करना। इस ज्ञान में रुचि हुई उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया ?

भगवान ! तेरी महा चीज़ तो अन्दर में पडी है न ! लेकिन तुने कभी नजर नहीं की, कभी अन्तरमुख नजर नहीं की। परसन्मुख रहकर सब किया। दया,दान, व्रत,भक्ति, तप आदि

परसन्मुखलक्ष्य करके (किये), वह तो मिथ्यात्व है। उसमें स्वर्ग-नरक मिले। उसमें कोई आत्मा का लाभ, शांति का (लाभ) मिले या जन्म-मरण का अभाव हो, कल्याण हो - ऐसा परसन्मुख की क्रियाकांड में कुछ (होता नहीं)। आहा..हा...! ऐसा क्यों कहा ?

अभ्यास तो बराबर (करना)। जीव, अजीव, आस्रव, आस्रव में पुण्य-पाप दोनों हैं, शुभभाव पुण्य है, अशुभभाव पाप है, ऐसा अभ्यास बराबर करना और बंधभाव, आत्म स्वभाव से (विपरीत) Appropriate विकार होता है, वह बंधभाव है। जड़ में बंधभाव है, वह कर्म का है, उस कर्म से रहित आत्मा के स्वभाव का भान करके शुद्धता प्रकट करना, वह संवर, निर्जरा है। पूर्ण शुद्धता प्रकट करनी, वह मोक्ष है। इसप्रकार सात तत्त्व का बराबर अभ्यास करके आत्मसन्मुख होकर आत्मा का ज्ञान करना, ऐसा कहते हैं।

देखो ! '**तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं**' वह बात आई। 'उमास्वामी', 'कुन्दकुन्दाचार्य' महाराज के शिष्य (थे)। 'उमास्वामी'ने 'मोक्षशास्त्र' बनाया न ? तो पहला सूत्र (लिखा) 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं।' तत्त्वार्थश्रद्धान कहो या 'आपो लख लीजे' कहो (दोनों एक ही है)। वह श्रद्धान की बात है, यहाँ ज्ञान की बात है। समझ में आया ? आहा..हा...! ये किसे करना है ? दूसरा कोई कर दे सकता है ? कोई किसी को दे सकता है ? समझना किसे है ? - ऐसा कहते हैं।

'**आपो लख लीजे**' '**आत्मा को लक्ष्य में लेना चाहिए अर्थात्...**' 'लख लीजे' अर्थात् '**जानना चाहिए।**' 'लख' का अर्थ जानना है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है ऐसा जानना। '**(यदि ऐसा नहीं किया तो) यह मनुष्यभव...**' आहा..हा...! तत्त्व का अभ्यास करके अपना स्वरूप शुद्ध आत्मा है, ऐसा अंतरज्ञान करना। यदि ऐसा ज्ञान नहीं किया तो मनुष्यभव '**(सुकुल) उत्तम कुल...**' में अवतार '**और जिनवाणी का सुनना...**' इतने तीन योग मिले हैं, वह व्यर्थ जायेंगे। आहा..हा...! समझ में आया ? यदि - ऐसा आत्मज्ञान नहीं किया, आत्मा की अन्तर श्रद्धापूर्वक अनुभव में ज्ञान आत्मा है ऐसा नहींकिया तो मनुष्यपना मिला क्या करे ? चला जायेगा। उत्तम कुल मिला, तेरा जैन कुल में अवतार हुआ '**और जिनवाणी का सुनना...**' देखो ! जिनवाणी अर्थात् वीतरागी वाणी। जिसमें परमेश्वर वीतरागता बताते हैं ऐसी वाणी

मिली। देखो ! समझ में आया ?

'ऐसा सुयोग बीत जाने पर,...' आहा..हा...! अपने यहाँ मिस्त्री है न ? वैसे तो स्वामीनारायण के मिस्त्री है न ? लेकिन यहाँ थोडा देखा।... भव तो होते हैं, इस भव में यदि आत्मा का कुछ नहीं करेंगे तो सब व्यर्थ जायेगा। प्रत्यक्ष देखो भैया ! एक भव में से दूसरे में आता है, अपना भाव करके आता है। ईश्वर उसका कौन है करनेवाला ? ईश्वर कोई करनेवाला है नहीं। आत्मा अपना ईश्वर है, वह जैसा भाव करे, वैसा बंध पडे, ऐसा जन्म लेता है। प्रत्यक्ष देखने में नहीं आता ? भाई ! आहा..हा...!

कहते हैं, भगवान ! यह आत्मा राग से, व्रत-अव्रत का विकल्प राग है, उससे भिन्न है। व्रत-अव्रत का परिणाम, आत्मा के ज्ञान बिना अनन्त बार किये तो चौरासी के अवतार मिले, दु:ख हुआ। उससे रहित अपना आत्मा ज्ञानानन्द शुद्धस्वरूप है, उसकी यदि अन्तरमदृष्टि नहीं की (तो) भगवान ! यह मनुष्यपना मिला, सुकुल मिला (वह सब व्यर्थजायेगा)। सुकुल मिला। सुकुल मिला उसमें क्या कहते हैं ? कि, तुझे इतना तो सुनने में आया है। तेराकुल ऐसा नहीं है कि, जिनवाणी सुनने में नहीं आयी। समझ में आया ? और जिनवाणी मिली है।

'ऐसा सुयोग बीत जाने पर,...' अनन्त काल... अनन्त काल... यहाँ तो यह कहा। ऐसा नहीं कहा, इतने पैसे नहीं मिले। भैया ! पाँच लाख नहीं मिले, दो लाख नहीं मिले - (ऐसा नहीं कहा है)। यहाँ तो (कहते हैं), मनुष्यपना, सुकुल और जिनवाणी ये तीन मिले और उसमें यदि आत्मज्ञान नहीं किया (तो व्यर्थ है)। उसका नाम सुयोग है। समझ में आया ? भाई ! पैसा नहीं मिले, ... नहीं मिला - ऐसा नहीं कहा है।

मुमुक्षु :- आ पैसा.. मर गये।

उत्तर :- मर नहीं गये। भाई ! पैसे पर द्वेष आया। पैसा है, लेकिन शरीर निरोग नहीं रहे तो क्या करें ? क्या करे ? शरीर तो निरोग हो।

यहाँ तो तीन बात ली है, देखो ! मनुष्यपना मिला और तुझे सुकुल (मिला)। जिसमें जिनवाणी मिली ऐसा कुल भी तुझे मिल गया है। समझ में आया ? मनुष्यपना मिला हो और

सुकुल न हो तो ? अनार्य देश में अवतार हुआ हो, लो ! मनुष्यपना मिला लेकिन अनार्यदेश में (रहना पडे)। जहाँ भील रहते हैं, जहाँ माँस खाते हैं, ये सब देखो ना, गोरे... क्या कहतेहैं ? परदेश। उसमें भी तुजे सुकुल मिला। सुकुल में भी जिनवाणी सुनने मिली। सुकुल में जन्म होलेकिन वीतराग की वाणी मिले नहीं। कितनों की जिंदगी ऐसे ही चली जाती है। वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ की वाणी मिली, जो वाणी गणधर सुनते हैं, जो वाणी इन्द्र सुनते हैं। उपर से इन्द्र आकर जो वाणी सुनते हैं, जो वाणी गणधर सुनते हैं, वह वाणी तुझे मिली है - ऐसा कहते हैं। आहा..हा..!

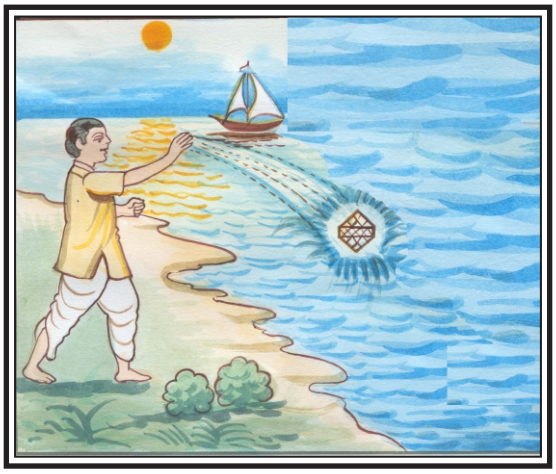

भगवान ! कहते हैं कि भैया ! यदि यह आत्मज्ञान नहीं किया और बाहर के झगड़े में पड़ा और तत्त्व की पहिचान नहीं हुई तो तुझे यह सुयोग मिला है, वह चला जायेगा, प्रभु ! आहा..हा..! समझ में आया ? '**ऐसा सुयोग बीत जाने पर,...**' समुद्र में समाये हुए '**सच्चे रत्न की भाँति...**' 'सुमणि' शब्द है न ? 'दौलतरामजी'ने शब्द भी कैसा लिया है ! सुमणि, ऊंचा मणि, सच्चा, उच्च (मणि)। लाख-लाख, दो-दो लाख के मणि होते हैं न ? रत्न होते हैं। मणिरत्न उच्च ! हाथ में लिया, समुद्र में पास गया हाथ ऐसे ऊपर किया, ऐसा किया तो छूट गया, गया अन्दर ! समुद्र में गिर गया।

मुमुक्षु :- जानबूझकर फैंकता है, ऐसा लगता है।

उत्तर :- वह फैंकता है, उसका अर्थ ही वह है। फैंके क्या ? हाथ ऊपर किया तो गिर गया। 'अनुभवप्रकाश' में दृष्टान्त आया है। समझे ? रत्न से भरा एक बर्तन मिला। बर्तन धोने को समुद्र में गया। वहाँ फिसल गया। बर्तन... बर्तन (साफ करने लगा)। अरे..! बर्तन धोने का

क्या काम है ? रत्न निकाल ले। बर्तन कीचडमें से निकला न ? कीचड़में से। जमीनमें से, कीचड़में से बर्तन नीकला, बर्तन कीचड़वाला था। उसमेंरत्न थे। उठाकर रत्न नहीं लिये, पहले साफ कर लूँ, नदी के किनारे (गया)। बड़ी नदी थी, साफ करने गया (तो गिर गया)। चला गया। आहा..हा... ! दृष्टान्त दिया है न ? हाथ उपर किया है न ? नर-सुमणि (लिखा है)। मनुष्यभव का सुमणि। ऐसा मनुष्यभव। देखो ! बड़े पर्वत है। कितना बनाया है ! देखा ?

शास्त्र तो कहते हैं, भगवान ! कि, एक वृक्ष हो, वृक्ष। उसे जलाकर उसकी राख हो गई। एक वृक्ष की राख (हो गई)। फिर राख के सब रजकणों का वह वृक्ष कब होगा ? नदी किनारे एक वृक्ष था, वह जल गया, राख हो गई भस्म (हो गया)। भस्म होकर समुद्र में (चले गये)। वही रजकण यहाँ आकर फिर से वह वृक्ष कब होगा ? समझ में आया ? ऐसे मनुष्यपना मिला, यदि तत्त्वदृष्टि नहीं समझ आयी तो तुझे सुमणि का योग मिला है वह सुमणि समुद्र में गिर जायेगा। आहा..हा... ! मनुष्यभव को सुमणि कहा ? पैसे को सुमणि नहीं कहा।

मुमुक्षु :- पैसा सुमणि है...

उत्तर :- धूल में भी सुमणि नहीं है। कौन कहता है पैसा सुमणि है ? यहाँ तो मनुष्यभव को सुमणि कहा। भाई ! आपके पैसे को सुमणि नहीं कहा।

मुमुक्षु :- ये तो मुनि...

उत्तर :- मुनि कहाँ है ? ये तो 'दौलतरामजी' हैं, गृहस्थाश्रमी पंडित हैं वे कहते हैं। गृहस्थ हैं, स्त्री-पुत्र हैं, हो तो हो, हमें क्या है ? हमारी चीज़ में तो है नहीं। समझ में आया ? बाद में कहेंगे, बाद में तुरंतकहेंगे, देखो ना ! '**धन समाज गज बाज।**' बहुत सुन्दर, 'छहढाला' ऐसी बनी है, साधारण जनता के लिये (बहुत अच्छी है)। बहुत अभ्यास नहीं करे, उसे अभ्यास करने के लिये बहुत सरल है। अभ्यास करने की निवृत्ति कहाँ है ? समय नहीं है,समय। टाईम नहीं। व्यापार धंधे में डूबा रहे। बाहर के क्रियाकांड में समय निकाले, उसमें आत्मा क्या है - उसे समझने का समय लिया ही नहीं। अनन्तकाल ऐसे ही चला गया। समझ में आया ?

कहते हैं, '**सच्चे रत्न की भाँति मिलना कठिन है।**' प्रभु ! आहा..हा... ! इसलिये तत्त्व

का अभ्यास करके... लोग कहते हैं और दूसरे (कहे), दो प्रकार की कथनीचले त उसे तत्त्व का अभ्यास हो तो वह उसका विवेक कर सके। विवेक कहाँ से कर सके ? एक ऐसा कहता है, एक ऐसा कहता है, एक ऐसा कहता है। कोई कहता है व्रत पालते-पालते धर्म होगा, कोई कहता है सम्यग्दर्शन बिना होगा नहीं। तो क्या है ? भैया ! विचार तो करना पडेगा या नहीं ? करना पडेगा। माल लेने को जाता है तो मिलान करता है या नहीं ? क्या सत्य है ? सर्वज्ञ परमात्मा क्या कहते हैं ? वस्तु कैसे होनी चाहिए ? और अभी तक कैसे प्राप्त नहीं की ? इन सबको उसे समझना चाहिए। उसका निर्णय करना चाहिए। भाई ! ऐसा मनुष्यपना मिला, यह साधन मिला, वाणी मिली, यदि चला जायेगा तो आँख बँधकर फू.. होकर चौरासी के अवतार में चला जायेगा। भाई !

भावार्थ :- '**आत्मा और परवस्तुओं के भेदविज्ञान को प्राप्त करने के लिये...**' आत्मा भगवान शुद्धस्वरूप और पर अर्थात् पुण्य-पाप का भाव, शरीर, कर्म ये सब पर हैं। दो के '**भेदविज्ञान को प्राप्त करने के लिये जिनदेव द्वारा प्ररूपित सच्चे तत्त्वों का...**' सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि में जो तत्त्व आये उन सच्चे तत्त्वों का। देखा ! वही सच्चे तत्त्व हैं। '**पठन-पाठन, (मनन) करना चाहिए,...**' समझ में आया ? अभ्यास करे बिना समझे (तो) ख्याल तो आता नहीं कि क्या चीज़ है ? कोई दूसरा कहे तो ऐसा, तीसरा कहे तो ऐसा। जैसे हवा चले वैसे ध्वजा (फिरे)। ध्वजा होती है ना धजा ? जिस ओर की हवा होती है उस ओर फिरती है। ऐसे आत्मा के यथार्थ तत्त्व का अभ्यास नहीं हो तो दूसरा कहे तो ऐसा, तीसरा कहे तो ऐसा। अपना निर्णय तो नहीं है। ऐसे नहीं चलता, ऐसा कहते हैं। तत्त्व का, चैतन्य का,जड़ का, विकार का, जड़ का वास्तविक अभ्यास हो तो ऐसा अभ्यास करने से (भेदविज्ञान होता है)।

'**जिनदेव द्वारा प्ररूपित सच्चे तत्त्वों का पठन-पाठन...**' बराबर करना। '**(मनन) करना चाहिए; और संशय, विपर्यय तथा अनध्यवसाय...**' ये तीन बोल आ गये। संशय - यह है या ऐसा है ? विपरीत अर्थात् ऊलटा है, अनध्यवसाय अर्थात् कुछ होगा। '**इन सम्यग्ज्ञान के तीन दोषों को दूर करके आत्मस्वरूप को जानना चाहिए।**' भगवान ज्ञान ज्योति चिदानन्दसूर्य का अन्तरबोध (अंतर्मुख) होकर करना चाहिए। '**क्योंकि जिस प्रकार समुद्र में डूबा हुआ**

अमूल्य रत्न पुनः हाथ नहीं आता...' समुद्र में रत्न गिर जाये तो कहाँ से मिले ? अन्दर गिरे ?

'**उसीप्रकार मनुष्यशरीर, उत्तम श्रावककुल और जिनवचनों का श्रवण आदि सुयोग भी बीत जाने केबाद पुनः पुनः प्राप्त नहीं होते।**' पुनः नहीं मिलता। '**इसलिये यह अपूर्व अवसर न गँवाकर आत्मस्वरूप की पहिचान (सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति)...**' अनन्तकाल में नहीं किया ऐसा '**करके यह मनुष्य-जन्म सफल करना चाहिए।**' उससे मनुष्य-जन्म सफल है। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन हुआ तो बाद में अनुक्रम से चारित्र होगा और मुक्ति होगी ही होगी। लेकिन सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन बिना जो कुछ करे उसमें जन्म-मरण का नाश होता नहीं। (विशष कहेंगे...)

❋

आत्मा अचिन्त्य सामर्थ्यवाला है । उसमें अनन्त गुण स्वभाव है, उसकी रुचि हुए बिना, उपयोग परमेंमे पलटकर स्वमें नहीं आ सकता । जो पाप भावोंकी रूचिमें पड़े हैं - उनकी तो बात ही क्या ! पर पुण्यकी रुचि वाले बाह्य त्याग करें - तप करें - द्रव्यलिंग धारण करें तो भी जब तक शुभकी रुचि है, तब-तक उपयोग पर-ओरसे पलटकर स्वमें नहीं आ सकता । अतः प्रथम परकी रूचि पलटानेसे ही उपयोग पर-औरसे पलटकर स्वमें आ सकता है । मार्गकी यथार्थ विधिका यही क्रम है ।

(परमागमसार-३६४)

❋

जिज्ञासु जीवको भूमिका अनुसार शुभाशुभ-परिणाम तो आयेंगे ही । रागको छोडू...छोडू- ऐसे राग पर दृष्टि रखनेसे राग नहीं छूटेगा । अतः एकदम (व्यर्थकी) उतावली नहीं करना । उतावली करनेसे राग नहीं छूटेगा बल्कि उलझन बढ़ जाएगी । राग छोडूँ-छोडूँ ऐसे नास्ति पक्षमें खड़े रहनेसे राग नहीं छूटेगा और उलझन होगी। स्वभावके अस्तिपक्षका यथार्थ पुरुषार्थ होने पर राग सहज ही छूट जायेगा ।

(परमागमसार-३६५)